



Editor

**SITALFRASAD BRAHMCILARI,
PUBLISHER**

**Jain-Mitra Karyalaya,
HIRABAG, GIRGAON, BOMBAY.**



**Printed by
C S. DEOLE
at his Bombay Vaithav Press,
1, Sadashiv Lane, Girgaon,
BOMBAY.**

प्रस्तावना ।

एको मे शाश्वतात्मा सुखमसुख भजो ज्ञान दृष्टि स्वभावो ।
 नान्यत्र किंचिद्विजं मे तनुयन करण भ्रातृ भार्या सुखादि ॥
 कर्मोद्भूतं समस्तं चपलमसुखदं तत्र मोहो ह्येष मे ।
 पर्यालोच्येति जीव स्वाहिनमवितर्यं मुक्ति मार्गं श्रयन्त्वम् ॥४१६॥

(अनित्यगति)

श्रीअनित्यगति आचार्य्य करते हैं. "हे जीव ! तू ऐसा चिन्तन कर कि मैं एक हूँ, अविनाशो अत्मा हूँ, सुखदुःखको जोर ही भोगने वाला हूँ तथा ज्ञान दर्शन स्वभावका धर्म हूँ । शरीर, घन, इन्द्रो, मर्द, री, जगत्, सुख आदि कोई भी अन्य जीव मेरी नहीं है; क्योंकि ये सब जगत्के पदार्थ कर्मसे उत्पन्न, संबन्ध (क्षणमग्न) और अन्तमें दुःखदाई है । इनमें कोई कारण मेरी मूर्खता है और तू अपने कल्याण करनेवाले सबे मोह-मार्गको अश्रय कर ।"

प्रिय मत्स्य सुखदुःखको ! मोह करने ही अन्तर्गत सुख निन्दन अन्तर्गत है । मोह सब अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत सुखदुःख है, मत्स्य सुखदुःखको मर्दी है, मत्स्य मत्स्यदुःख है । मैं निन्दनदुःखको मर्दी निन्दे मत्स्यदुःखको मत्स्य ही मत्स्यदुःख है, निन्दे अन्तर्गत अन्तर्गत करने है

मुक्तिका सुख न मत्स्यदुःख है और न मत्स्यदुःख है । मुक्तिका मत्स्य सुख है कि मत्स्यदुःख को मत्स्य सुख निन्दन निन्दे मत्स्य सुख है । मत्स्य सुखदुःख को मत्स्य सुख निन्दे अन्तर्गत

करना है । यद्यपि बहुतसे लोग आत्मीक रसके आस्वादको लेना चाहते हैं, परंतु उनके साधु संगतिकी अप्राप्तिसे तथा स्याद्वादक्य-द्वारा संगठित पदार्थ मान्दिकके ज्ञानका अनुभव न होनेसे वे अपनी भावनाको पूरी नहीं कर सकते हैं ।

आत्मानुभवके रसिक मुमुक्षुजनोंके हितार्थ ही हमने अपने उप-तुच्छ अनुभवके द्वारा जो हमको श्रीसमयसारणी, श्रीपरमात्मप्रकाशश्री तथा अनुभवप्रकाशनी आदि अध्यात्मिक ग्रन्थोंके बाँचनेसे हुआ है, जैनमिश्रके अन्दर ता० २१ मई सन् १९०९ के अंकसे लेता० १० अक्टूबर १९११ के अंक तक अनुभवानन्द नामके लेखोंकी प्रकाशित किया था । अब हमारे पास बहुतसे भाइयोंकी प्रेरणा हुई कि इन लेखोंको पुस्तककार निकाला जाय, इससे यह पुस्तक प्रगट की गई है ।

पाठकोंको उचित है कि इसके हरएक लेखको एकान्तमें बैठकर पुनः पुनः कई बार बाँचें । जब बाँचते २ उपयोग थिर होगा तब परमअनुभवरसका स्वाद आवेगा । यदि शीघ्रतासे इस पुस्तकको पढ़ा जायगा तो आनन्दका मिलना कठिन होगा ।

यदि प्रमाद व अज्ञानवश इन लेखोंके संगठनमें कोई अशुद्धिया रह गई हों तो विद्वज्जन हमें क्षमा करते हुए सुधार कर पढ़ें तथा हमें सूचना दें ताकि द्वितीयावृत्तिमें सुधार दी जाय ।

ग्रन्थ संशोधनमें जो कुछ अशुद्धिया रह गई थीं, उनका शुद्धाशुद्धि पत्र इस पुस्तकके शुरु में ही लगा दिया गया है; पाठकगण, पहले उसके अनुसार अशुद्धिया सुधार लें फिर पुस्तकको पढ़ना शुरू करें

मुल्तान शहर
ता० ८-९-१९१२ ई० } जीनलप्रशाद ब्रह्मचारी ।

विषय सूची ।

विषय.	पृष्ठ संख्या.
अगम दुर्ग	१
अद्भुत चोरी	३
भोजन-सत्कार	५
तृषा-शमन	७
मेरी महिमा	१०
युद्धमें गृहस्थ-मुख	१२
विवाह-रस	१६
दशाल्पांगिक धर्म	१९
आगारी साधु	२२
बन-विहार	२३
आर्त्तिक रामायण	२५
स्वस्तु-वाटिक	२९
सन्ध्याकीर्त्ती अपूर्व सामायक	३०
आर्त्तिक बाह्य तप और अद्भुत कथाय	३३
अध्यात्मिक अनरग तप	३७
गुप्तानें विश्राम	३९
मिथ्यात्व गुणस्थानिकी दशा	४१
नाम-दान गुणस्थानिके बदन	४५

इन्द्रियमार्गणाकी ओछी शक्ति	९३
कायमार्गणमें आकुलता	९६
में अक्षय हूं	९८
योगमार्गणमें ढगनगाहट	१००
देवमार्गणाकी आकुलता	१०२
कषायोंकी बंचकता	१०३
ज्ञानमार्गणाकी महत्त्वता	१०६
संयममार्गणमें स्वरूप विक्रम	१०८
दर्शन मार्गणाकी अवलोकन	११०
लेख्या मार्गणमें भवभ्रमण	११३
मन्याभव विकल्प न कर्ना	११५
सन्धुक्त मार्गणाकी झलक	११८
संज्ञी असंज्ञीकी कल्पना	१२०
अहारक मार्गणाकी विकल्प	१२२
पंच मूर्तोंकी छत्र	१२४
अनुभव सुख ही मार है.	१२६

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	बन्धि	मार्ग
२	न अय	ममय
३	मार्ग	मार्ग
४	महाव	महाव

१४	शांत	शांत
१३	जगा	जगा
१९	दृष्टी	दृष्टि
११	सम्यक्ता	सम्यक्ता
<	दृष्टी	दृष्टि
१२	सम्यक्दृष्टी	सम्यक्दृष्टि
३	बेसुष	बेसुष
१५	को शांतकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें शांतकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलन में इस जापी आत्माको	को शांतकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें इस जापी आत्माको
१०	को	की
५	८००	८०००
१७	कार्यों	कार्यों
१	घार	घारे
<	सम्यक्दृष्टि	परमसम्यक्दृष्टि
६	पहचानने	मनन करने
	कृत्कृत्यक	कृत्कृत्यनका
	कृत्कृत्यक	कृत्कृत्यक
	कृत्कृत्यक	कृत्कृत्यक

१०७	१४	द्विरूपवर्गधारा १.२	द्विरूपवर्गधारा
१०८	१७	प्रतिभा समान	प्रतिभासमान
१११	६	उपयोगका	उपयोगकी
११४	१४	कर्मबंद	कर्मबंध
११८	८	कारणलब्धिद्वारा	करणलब्धिद्वारा
१२३	२०	जीवका	जीवको
१२४	१४	आहरको	आहारको
१२४	१८	श्रुषी	स्वरूपी
१२६	७	काष्ठा	काष्ठ
१२६	१२	व्यवहारक	व्यवहारिक
१२८	६	शुलकाती	शुलकाता



श्रीवीतरागाय नमः ।

अनुभवात्तन्द ।

अगम दुर्ग ।

(१)

मोहन्यारके अज्ञानसे मंत्रारके प्रत्य करवा संतारी जीव
 सोनित मन हो निज स्वरूपके झलक न पा परपदके
 दौलति प्रमग करवा हुआ किम बिलह ज्योतिसे प्रदर्शित पदार्थ और
 उनके परिणतनके अज्ञानके शक्तिकरक ज्ञान उनके निकट जाता
 है, परन्तु शांतिवा न प्राप्तकर अधिक दहन्यारके वडा अक्षिक २ अङ्कु-
 लित होता है । तीन लोक अज्ञेकरक सावा-दृष्ट, शुद्ध वैदन्त्यनय
 अविनाशी, निर्विकल्प, परमानन्द स्वयम प्रभु अने स्वरूपके मुक्त
 अज्ञ परपदके अज्ञे हो ज्यो मोदिन हो गह है यही अक्षय हो ।
 मोहन्यारके अज्ञेके अज्ञ-अज्ञेके प्रमग करवा ज्यो अज्ञ महदा
 अज्ञान कर गह है यही अज्ञ है अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके
 अज्ञ करके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके
 अज्ञ हो मोहन्यारके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके
 अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके अज्ञेके

सिंह पदकी गुप्त शक्ति अपने अनुभवमें आ जाए, क्षणमें ही स
 पदको उन्मूलकर निर्मय हो अपनी शक्तिकी अपनेमें मान्यता की
 नेमे निराकुल रहे, सुदृ संगतिमें न पड़े। अपनी मानी सुखा
 और अपनी मानी ही दुःखदाई है। मैं ही सिद्ध निरंजन परमात्मा हूँ
 मुझमें अन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभादि भावकर्म, ज्ञानकर्मा
 आदि द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म—सर्व अन्य ही हैं। वे क्षणिक, मैं असी
 नाशी हूँ। वे मूर्तिक, मैं अमूर्तिक हूँ। वे दुःखस्वभाव, मैं सुखस्वभाव
 हूँ। वे उपाधिरूप, मैं निरुपाधि हूँ। वे मरुत्क, मैं निःकल्क हूँ।
 परार्थीन, मैं स्वार्थीन हूँ। उनका मेरा जग भी मेल नहीं। जो उनमें
 संगति को वह मदीर्षा हो। जो मेरी संगति को वह निर्दोषी हो
 मेरी सत्पत्ति अविनाशी, उनकी विभूति विनाशीक। मैं अपने निज
 आत्मानुभवकी भावनामें परमवृत्त हूँ। मुझमें जन्म, जरा रोग, व्याधि
 नहीं, कर्म रिपु मेरा मुह देखने नहीं; मैंने अपनी अनुभूतिकी भूमि
 में ही अपना अगम दुर्ग बनाया है, उसीमें निवास करता अपने
 विद्वत्पति गर्नाके माथ मुझमें श्रद्धा कर रहा हूँ। मुझे भोजन, वस्त्र
 आभूषण, सुगंध छत्र, तेल, फुलेल, शय्या, आसनकी आवश्यकता
 नहीं। अपना सुखमसृष्ट, अपना भोजन, अपनी निमित्त प्रसन्नतावली,
 अपना कर्म, अपना कर्मरूप शील, अपना आभूषण, अपना ज्ञान,
 अपनी मृता। अपने नन्दनका अपने रूप अपना भाग्य-
 ईश्वर, अपना कल कलेज अपने कल्पकाल। अपने शय्या
 अपना निरावयवत मज। अपने अन्तर्गत हूँ वस्त्र सत्पत्ति में
 और मा विद्वत्पति परमवृत्त निज मन्त्रण ही मन्त्रणप्रदायक

हैं। मेरे दुर्गमें अन्य किसी मेरे विलम्ब पक्षका प्रवेश नहीं। मैं अपनी अद्भुत शक्तिका आप स्वामी हूं। मैं सबको देखता हूं, परन्तु मुझे कोई नहीं देखता। मैं किसीके पास जाता नहीं, परन्तु सब मेरे निर्मल आत्मदर्पणमें (जो मेरे ही अनुपम शय्या महलमें लगा है) आपसे आप अपनी समय २ की परिणतियोंको लिये आ आ कर मुझे अपना रूप दिखा रहे हैं। मुझसे अन्य जन परस्पर एक दूसरेको रागसे ग्रहण करते हैं, परन्तु मैं अपनी चिदनुभूतिरूप पटरानीके सिवाय किसीको ग्रहणकर पर-पद-रत नहीं होता। जिस सुखको पानेके लिए मुझसे अन्य जन तरसते हैं, उस आनन्दको पाकर मैं अनुभवानन्द रूप रहता हूं।

अद्भुत चोरी।

(२)

आज मैं, जो अनादि कालमें मोह, मदिराके तीव्र नदीमें बेहोरा हो रहा था, किञ्चित् मदकी हीनतासे जो सचेत होता हूं तौ अपने ज्ञानानन्द स्वरूप अरूप अविनाशी अखंड त्रिलोकभूष चैतन्य प्रभुको अपनी दृष्टि मन्मुख न देख विह्वल होता हूं और उस वीतराग स्वन्वभाव—गुप्त स्वामीमें राग प्रगट करनेको दीडता हूं; जिस जगत् कृत्रिम रूपकी प्रत्यक्ष चमककी उमकमें जाता हूं, वह ही जलके भ्रममें बच्चेनके प स्नेहित है अधिक अधिक अपने श्रेष्ठ इष्ट ईश्वरमें मिलनेके लक्ष्मण—तृपने बधित होता हूं। अपने परम नेहकी खोजमें पलायनन होने होने मैं एक शीतल सम्यक्त वृत्तकी छायामें आकर विश्राम लेता हूं और बहु

परिणतिसे उद्योग करता हुआ सर्व विभूति चुराकर अपने त्रिकोटके भीतर गुप्त भंडारमें रखता हूँ और उसको भोगकर सुखी होता हूँ ।

यद्यपि मैं मूपकवत् व्यवहार करता हूँ, पर मैं कभी अपने अचौर्यव्रतको खंडित नहीं करता । यद्यपि मैं स्वात्मघन चुराकर लता हूँ, तथापि जहांसे लाता हूँ वहां वह घन वैसाका वैसा ही बिना एक परमाणुको कम किये रहता है । यह कुछ मेरी चोरिमें अद्भुत शक्ति है कि, जिसको मेरे स्वामी भले प्रकार जानते हैं और यह उनकी ही आज्ञा है कि ऐसी चोरी करो, तुम कभी अपराधी नहीं हो ।

आज इस वृत्तकी शीतल विवेकरूपी छायामें बैठकर और अपने इष्ट परमेष्ठी निरंजन परब्रह्मरूप स्वप्रभुका अनुभवकर सर्व वासनामे रहित अनुपम अनुभवानन्दको प्राप्त होता हूँ ।

भोजन-सत्कार ।

(३)

चैतन्य अभिराम गुणधाम आत्माराजका विधानरूप पद अटल, अभय, अचल, अविनाशी और अमर्यादरूप है । जिस पदकी दीप्तिमान किर्णवर्णी भवावलीनको क्षणमात्रमें विस्मय कर देती है; जिस पदके समस्त पदविस्तार पदभंग लज्जित हो उठने नहीं, जिस पदके धर्म, निजधर्म विधान अतिकर्म मन्त्रकर्म रहकर अननकर्म तक भी निजपद-समन्वय के चरणों में नहीं ऐसे पदके अस्मिता, भव ब्रह्ममें लक्ष्मी अर्पण मोहनमो कर्मके हृत्कर्म अत्र अत्र अस्मिता

प्रवेशकर भेदज्ञान खड़ग ले चिरकाल प्रवेशित रिपुदलको संहार करनेके अर्थ उद्यमी हुए हैं ।

इस खड़गकी दीप्ति पाते ही शत्रुओंके दल कहां चला गए—सो कुछ पता नहीं । वे रहें या जाए उनकी ओरसे भयका विध्वंसकर निर्भय हो अनुभव रसका प्रेमी अपनी निर्मल अनुभूति देवीका दर्शनकर उन्मत्त हो उसके अद्भुत रूप रसका पान करते २ ऐसा एकासन हो गया है मानो एक स्फटिकमणिकी पुरुषाकार मूर्ति ही है ।

ऐसी स्फटिकमणिकी पुरुषाकार मूर्तिमें अपनी निर्मलताके कारण जो जो पदार्थ प्रतिभाषित होते हैं, वे सब स्वयं अपना जैसाका तैसा रूप देव अपनी पर्यायके अभिमानमें अपने २ स्थलसे सरक कर कभी भी इस मूर्तिमें आते नहीं और न यह उन्मत्त पुरुष दौड़कर उनकी तरफ जाता है । इस अंतरग भूमिमें रमनेवाले पुरुषका स्वमानका अभिमान इस पुरुषको सर्व अन्याकी प्रीतिसे तुड़ाकर एकाकी कर देता है; तथापि इस मुग्धको सुख नहीं. यह किसीकी भी परवाह न कर अपने अनुभव रसके स्वादमें मग्न है ।

यद्यपि यह उन्मत्त है तथापि इसकी अनुभूति देवी सदा सावधान है । इसके शत्रु, जो इसकी खड़गकी चमकसे लुप्त हो गए थे, रह रहकर इसको दबानेके लिये आते हैं । उनका मुख देखते ही अनुभूति देवी इसे चिताती है । यह उसी क्षण भेद—ज्ञान—असिको चमकाता है । वे दुर्दमन फिर गुप्त हो जाते हैं ।

इस प्रकारकी उन्मत्तता उन्मत्त पुरुषको कैमा बना देती है, यह वह परलप ही जाने या उसका निज निर्मल रूप जाने । इस ज्ञानमें

वस्त्रोंको फेंकता है और बिना किसी ओर देखे नग्न हो स्वरस-सरो-
वरमें प्रवेश करता है । शांत, मिष्ट, निर्मल स्वरस पूर्ण, स्वानुभवकी
वैराग्य पवन द्वारा घेरी हुई, कछोलें जब उस पुरुषके तनको
स्पर्शित करती हैं और अपनी शांतता उसके प्रदेशोंके अन्दर प्रदान
करती है तब उस पुरुषको जो भवातापकी शांततासे निराकुलता
प्राप्त होती है उसको यही जानता है या ज्ञानानन्दी मिद्ध परमात्मा
जानते हैं । अपने निर्मल विवेकके तुल्लुओंसे शुद्ध स्वरस-जल लेकर
जब अपने स्वरुपाचल मुखके भीतर क्षेपण करता है तब वह पुरुष
तृषाको शमनकर अनुपम जलकी अपूर्व मिष्टताका स्वाद छे
तृषि महित होता है । पीते पीते अघाता नहीं, पीते पीते कभी पेट
फुलता नहीं, ऐसे जलका पानकर प्रफुल्लित बदन व्यक्ति अपनी
शक्तिकी व्यक्तताकी शलक पाकर सचेत होता है और उस सरो-
वरमें ही निरन्तर अवगाह करनेका संकल्प करता है ।

अपने तनको हृलमायमान देव और भव-वनमें भटकते हुए
अपने पूर्व माधियोंमें अपनेको श्रेष्ठ मान ज्यों ही वह अपनेको पर-
मात्मा, परब्रह्म भविष्यगी, मोक्ष-श्राम-विहारी, अनुल पराक्रमधर
अकलंकन कर्ता है कि यथायक इस मानके अभिमानमें उन्नत
हो या जगत्को भय डैन्य भावको गल्य भङ्ग हो. नितज्ञान-तनमें
विगलित गृह स्वयं मंगेवके सीनर उन्नत वेशा करने लगता
है । माने मंगेव हो अपना नून्य स्थान बना नाचना है । ऐसे
नृत्यका कर्म, नि शक मन्वन्त-गुण रंया, स्वपटमें बर्मया, तब
जब नृत्य करने लकन है अपने तनको पहिले ममयमें अधि

मेरी महिमा ।

(५)

आज मैं कर्त्तापनेके कटुक, विरुद्ध और निःसार भव-विकारको त्यागकर निज ज्ञाता-दृष्टा स्वभावमें कल्लोल करनेके लिये उद्यत हो गया हूँ । मेरा बनाया भव-विकार मुझे ही विष-आहार सा हो चुका है । जिस विकारने मुझे परार्थीन बंधनमें डाला और मेरी स्वतंत्रताका आघात किया उस शत्रुवत् प्रपंचधारी व्यवहारीसे मुझे क्या प्रयोजन ? मैं चैतन्य-रसका चैतन्यमई घट हूँ । मेरा उपादान और निमित्त कारण एक ही है । मुझे त्रिलोकमें मेरे किसी परमाणुके अखरे* मात्रसे मतलब नहीं । मैं कभी किसीको बनाता नहीं । मैं कभी किसीको जिगाड़ता नहीं । मैं अपने स्वस्वभावमें अविचलित रह सदा निज रसका ही पान करता हूँ । मुझे क्रोध, मान, माया, लोभ और उनके पिता राग, द्वेष तथा महापिता मोहसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं । मैं शान्तरूप हूँ, वे उद्वेगरूप हैं । मैं ज्ञानरूप हूँ, वे अज्ञानरूप हैं । मैं निष्क्रियरूप हूँ, वे क्रियावान व्यवहाररूप हैं । मैं गुणनिवान हूँ, वे गुण विरुद्ध औगुण निवास हैं । मैं निरपराधी हूँ, वे अपराधवान हैं । मैं निर्बच हूँ, वे बचसहित हैं । मैं एकाकी एक रूप हूँ, वे अनेकनेकरूप हैं । मेरा उनका विकारलमें सम्बन्ध नहीं, मेल नहीं, स्पर्श नहीं; न मैं उनका कर्त्ता, न वे मेरे कर्मे । मेरे निर्मल ज्ञान दफ्तरमें कर्त्ता कर्मका शब्द ही नहीं । मैं

* अविभक्त परिच्छेदरूपगुण.

शुद्ध आहार—भोजी, अपनी शुद्ध परणतिका निरंतर खोजी हूं। मुझे मेरे ज्ञान—साम्राज्यका प्रबन्ध है, जिस प्रबन्धमें अनुरक्त मैं जगत्के प्रपंचरूप प्रबंधते असन्बन्ध हूं। मेरा ज्ञान—साम्राज्य मेरी ही निरन्तर सावधानी और परम पुरुषार्थिके बलसे अटल है। यद्यपि मैं त्रिलोकालोकमें व्यापक हूं, परन्तु सदा ही निज थलको न तनकर अन्यापकरूप हूं। यद्यपि मैं इन्द्रिय—ग्रामोंकी रचनासे शून्य हूं, तथापि अपने अतीन्द्रिय गुण ग्रामका धाम होकर अशून्य रूप हूं; यद्यपि मैं निज परिणाम—कर्मके करनेसे कर्ता हूं, तथापि परकर्तृत्वके अभावसे सदा अकर्ता हूं। यद्यपि मैं निज परिणति रमनके स्वादका भोक्ता हूं, तथापि परपदार्थका स्वाद न लेकर सदा अभोक्ता हूं। यद्यपि मैं परवस्तुओंकी प्रवृत्तिकी इच्छासे रहित सदा कृतकृत्य हूं, तथापि निजात्मीक स्वस्वमयरूप प्रवृत्तिमें प्रवर्तन करता हुआ सदा अकृतकृत्य हूं। यद्यपि मैं अपने आत्मीक द्रव्यका धारी अपने द्रव्यको सदा ज्योंकी त्यों रखकर नित्यरूप हूं, तथापि केवलीगम्य पद्गुणी हानि—वृद्धिरूप समुद्र—क्लेशलवत् अगुल्लशुगुण परिणमनके कारण नित्य पर्य्याय द्वारा व्ययोत्पादको सहन करता हुआ अथवा नित्य अपनी अवस्थाको बदलनेवाले ज्ञेय पदार्थोंके मेरे निर्मल ज्ञान—दर्पणमें समय २ परिवर्तन होते हुए ज्ञेयाकारोंकी अनित्य स्थितिके झलकनेके कारण उस झलकनको धारण करता हुआ अनित्यरूप हूं। यद्यपि मैं केवलज्ञान—तनका धारी होकर अपने जाति स्वभावधारी केवलज्ञानियोंसे प्रत्यक्ष और सम्यग्ज्ञानियोंसे परोक्षरूपसे दर्शन योग्य हूं, तथापि निजानुभवरहित उन्नम्य अज्ञानियों द्वारा सदा ही अदृश्यरूप

हूँ । मेरी शक्ति निराली है । मेरे ही अनुभवने मेरी शक्तिकी व्यक्तता निकाली है, परमपदधारी परमेष्ठी, पंचनाम व्यवहारी, अविकारी, साम्य प्रचारी, सुखकारी, मेरे ही अनुभवकी अपूर्व महिमा है । मुझे जो कोई विभाव भावोंका और परद्रव्योंका कर्ता कहे वह स्वयं अज्ञानी और अनुभव-रसरहित, बिरसका स्वादी, मोह व्याधिने पीड़ित परमानी है । जिन्होंने आत्मबाग खोया है और उसमें सुगुणरूपी सुगंधित पुष्पोंको उगाया है वे आत्म-मोही मुझे कभी भी परका कर्ता कहनेके नहीं । मैं आज अपने स्वतंत्र बल्के अभिमानमें उन्मत्त हो अपने आत्म-वनके भीतर घूँसा करता हुआ स्वात्मगुण पुष्पोंकी सुगंधको लेता हुआ और निज परिणतिरूपी अर्द्धाङ्गिनीके साथ सैर करता हुआ परआनन्दसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद लेता हूँ ।

युद्धमें गृहस्थ-सुख ।

(६)

जिम शत्रुने आने तीन पराक्रमसे तीन लोकके संसारियोंके नीचेकर अपना विजयका डंका बनाया है और जो अपने त्रिलोक-विजय अभिमानकी मदिरा पीकर उन्मत्त हो युद्ध-स्थलमें आकर लड़ा हो अपना पेट फूट्य रहा है-ऐसे शत्रुको जीतनेके लिये आज मैं अग्निनिभ भेदज्ञानद्य धनुष हाथमें लेकर लड़ा हो गया हूँ । मेरे धनुषकी शरोंके मारने हिमाकी भी ताकत नहीं है कि जो टिक सके । मेरे भेदज्ञान धनुष्यमें निकला हुआ बीतराग भावका बाण

गया, परन्तु ज्यों ही मैं भरा दम लेता हूँ कि वह निर्लज्ज फिर सामने ताकता है। सच है, मैं पंचम गुणस्थानके रेजिमेंटका सिपाही हूँ। मेरे बाणोंमें उतना बल नहीं जितना थ्रेणी—आरूढ़ लेफ्टिनेन्टोंके बाणोंमें होना है, परन्तु मैं अब आलस्य करनेका नहीं, मैं तो इससे बारंबार बाण मारे ही जाऊंगा। मेरा यह अभ्यास ही मेरी उन्नति करेगा और मैं कुछ कालके भीतर अवश्य थ्रेणी आरूढ़ हो तीव्र बाण चला इस शत्रुको मार मारकर निर्वल कर दूंगा और बारहवें दर्जेपर पहुंचते ही इसको ऐसी अधमरी हालतमें कर दूंगा कि यह निर्वल आंखोंसे मेरी ओर देरता रहे, परन्तु अपना सारा अभिमान और अपना सारा बल भूल जाए। मैं जहां चौदहवें दर्जेमें पहुंचना और अपने अनंतगुणव्य सेनाका स्वतंत्र कमान्डर—इन—पीठ (सेनापति) हुआ कि इधर इस शत्रुका भी प्राणान्त हुआ। मैं जानता हूँ कि यह वैक्रियक* रूप धारी है, नाना रूप होकर नाना जीवोंको सनाता है। इसकी जो अनादि अनंत शक्ति है उसको यह प्रयोग तो करेहीगा। करे, तिनके दुर्भाग्य हैं उन्हींपर इसका आक्रमण होगा। मैं तो समझ गया हूँ। मैं तो इसकी नस नसमें जानकार हो गया हूँ। मेरा इसका मुख्यकाल तो थोड़े ही दिनके लिये है। मुझे निश्चय है कि मैं इसे एक दिन मारकर गिरा दूंगा और तब यह अनंत कायमें भी मेरा मुहाबला करनेको मदा नहीं हो सक्ता।

मुझे अब भी आनन्द है, मेरा कुछ भी बिगाड यह आश्रय नमस्वर्गी शत्रु नहीं कर सक्ता। यद्यपि मैं इस शत्रुसे युद्ध कर रहा

* वैक्रियक शब्दके अर्थसे प्रयोजन है।

विवाह-रस ।

(७)

परमामृतके प्रवाहसे परिपूर्ण, एकटिक समान निर्मल, स्वच्छ-
चिज्ज्योति विलासी, अविनाशी, अत्यानन्दधामप्रवासी, कर्मरहित
रहित, विभावमेघाढम्बरविरहित, स्वभावपरिणमनविकाराशरहित
ज्ञान-चंद्रमा आज मेरे स्वच्छ हृदयरूप आकाशमें उदयको प्राप्त हुआ
है । मेरे अद्भुत चंद्रकी चांदनीके सामने निधर देखता हूं पीतल
पीतलही विदित होता है । कहां गए वे राग और द्वेष, जिनके क-
शमें पड़ा हुआ मैं किसीको शुभ और किसीको अशुभ देखता था ।
धन्य है आजका समय । जिन दुष्टोंने मुझे कभी पापी और कभी
पुण्यात्मा कहलाया और मुझे अनादि कालसे अत्यन्त दुःख दिने
उन्हींकी सूरत आज मैं नहीं देख पाता हूं । जो मैं बहुत ध्याने
देखता हूं तो मैं अपने चंद्रमासे भिन्न अचेतन अवस्थामें पड़े हुए
और स्पर्श, रस, गंध, वर्णको लिये हुए एक पुद्गलके समूह मात्रके
देखता हूं, जिस समूहका स्थूलसे स्थूल सुमेरु पर्वत सदृश टुकड़ा
अथवा मूँहसे सूँह परमाणु समान अंश मेरे चंद्रमाके स्वभावसे स-
ंबंधा भिन्न है । जिस पुद्गल समूहके किसी अहृदय विभागको मैं अ-
पनेही अज्ञानमें पुण्य और पापके नामसे पुकारता था, वही विभाग
आज मेरे ज्ञान-चंद्रमाके निर्मल प्रकाशमें एक नामसे और एक रू-
पसे प्रतिभाषित होता है । मेरे चंद्रमाका विमान उज्ज्वल, निर्वाण,
और चिन्मूर्तिमयी है । उमक्ये कोट भी पुद्गल-समूहका विभाग मर्त्य

आगारी साधु ।

(९)

सतमयरहित, स्वकुलमानाकलम्बी, सामर्याद-प्रवाही, स्वसमाधानुरागी, सुधासमूह, आत्मसाधु आत्मव्यक्तताके साक्षात् साधनमें उन्मत्त हुआ, विद्योक्तको विस्मरण किये हुए मनोहर आत्मनामके सीतर रमन कर रहा है । मैं ज्ञाता, दृष्टा सत्यस्वरूप हूँ; मैं कर्ता मोक्षा नहीं हूँ, स्वरूपानन्दी मेरा इष्ट है । आत्मसाधुकी यही अविषड श्रद्धा, यही माद रति, यही सच्चा लोभ इस साधुका परमप्रिय मित्र सम्यग्दर्शन है । स्वरूपकी शुद्धता स्वस्वरूप परिणामने ही प्राप्त होती है, विद्योक्त प्रभु अविनाशी मिद्धात्मा मेरा ही वाम्बविक रूप है । वट् द्रव्यमय लोकमें जीव द्रव्य उपादेय और अन्य श्रेय और हेय हैं । यही सद्यः, विमोह, विध्रम रहित मक्षा ज्ञान मेरा प्रिय सहोदर सम्यग्ज्ञान है । इन्द्रिय और अकिन्द्रिय गिय वामनाभोंमें दूरकर्त्री काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, राग, द्वेष आदि विषयोंमें विद्वान्, पद्मकर, मानान्य सामर्येदन ज्ञानमें तर्हीन, तथा परम पवित्र अल्प सिशुद्धतामें मगन, सतमयरागोही जगत् आचरण मेरा सद्गुरु सम्यक् चारित्र्य है । इस रत्नप्रय स्वरूप परम धर्मेश मणी आत्मसाधु शुकुलित वदन अल्पप्रपादनके हेतु सर्व आत्माभोंकी मन्त्रने उन्मत्त हो क्रोधरागमदी तितितिकी उत्तम सत्कार्य परम सुन्दर देवीकी उत्तमरक्षा मन्त्रको पृष्ट सुकम्पानमें गिणनवन कल्प मरिचि मय समुद्रम दिवित अद्भुत पद्मत्र नीर निहत्रय

कहीं अनंत मुल है, कहीं क्षायक सम्पत्त्व है तो कहीं परम
 धैर्य है; कहीं निराकुल्यता है तो कहीं निराकुल्यत्व है, कहीं
 बीनरागता है तो कहीं शिवनारिसे संयोगता है; कहीं अनंत छम
 है तो कहीं अनंत भोग है; कहीं इन्द्रिय-भाव-वियोगता है तो
 कहीं अनीन्द्रिय-भाव-प्रगटता है; कहीं जगत् विस्मर्णत्व है तो
 कहीं जगत् स्मरणत्व है, कहीं विद्येकज्ञता है तो कहीं विद्येक-बु-
 न्यत्व है; कहीं उत्तम दया है तो कहीं उत्तम ब्रह्मनर्ष्य है; कहीं उत्तम शौच
 है तो कहीं उत्तम आकृषिन्व है, कहीं परद्रव्य-रस-रतिवता है तो
 कहीं सद्रव्य-रस-प्रकारिता है। इन गुणरूपी साठोंकी शोभा और
 मुन्दर मुग्नकोछे छेता हुआ यह अंतरात्मा एक परम विस्तीर्ण निर्मल
 धर्म-ध्यानरूपी वृक्षकी छायामें विराजमान होता है। इस वृक्षके
 उत्तम मार्दव रूपी अत्यन्त कोमल और मनोहर पत्रोंका दृश्य हम
 अंतरात्माकी ज्ञान वस्तुओंको स्वर ही सरावट कर रहा है। उत्तम
 मन्वकी मुगन्वित पत्र इस वृक्षमें भेंट करके ज्यों २ हम अंतरात्माके
 कल्पिकको छायती है त्यों २ इसके अंतरंगमें विरक्तता रश्मि निर्मल
 होता जाता है। भेद-विज्ञानके मनोहर पुत्र निम समय वादुके
 मन्वमें टूटकर हम अंतरात्माके ऊपर पड़ने हैं। हमारा माग
 शरीर उसके मुग्नमें भरक जाता है। जब हम अंतरात्माके
 मन्व-धर्म छायते है तब उन्ही मनस हम वृक्षके पत्रनुभावर
 वृक्षको भेंट छेता है और उसके अन्त में हुए मुर-मनूदध पत्र-
 का भाव ही स्वर और वृक्षमें लून छाक है। इस मुग्नमें अर्त
 छिपि है। तबछ अन्त हम अंतरात्माके राम वृक्ष काक है।

यही और मुझे प्रेरित कर रही है मुझे उत्कट आकांक्षा है कि, मैं
 जिस बन्धन-कंधारा स्वाद मद्धा लेता हूँ—यही मेरा परम सुगन्ध
 जो है मेरे सभी कामों का चिह्न है, मुझे उम मार्गपर चढ़ना है।
 इन सब मुझे स्तब्धता नहीं, मुझे अद्भुत स्थायीता नहीं।
 जो है जो मैं जान कि मैं आगे परको पहिचान लिया
 जो मैं जान कि मैं अद्भुत मद्धा मुझे अब मार्गपर चढ़नेका विफल
 जो मैं जान कि मैं अद्भुत ज्ञानम विभूत है। इसका अधिमान
 जो मैं जान कि मैं अद्भुत नहीं बनाता है। जो अधिमानके
 जो मैं जान कि मैं अद्भुत करने के सम्पत्कर्मदिन
 जो मैं जान कि मैं अद्भुत अद्भुत इम शक्तिमें करते हैं।

॥ ॐ नमः शिवाय ॥ अथ यथा तत्रात्पुंसो न मे स्यादित्युक्तानो-
 -पुत्र इत्येवमस्मिन्मया ज्ञानमस्ति अथवा नो मयिनि परतो
 न इति तदापि यथा ध्यातमानान्धावनामसिद्धाग्नि मय्य-
 इत्येवमस्ति

॥ ॐ नमः शिवाय ॥ अथ यथा तत्रात्पुंसो न मे स्यादित्युक्तानो-
 -पुत्र इत्येवमस्मिन्मया ज्ञानमस्ति अथवा नो मयिनि परतो
 न इति तदापि यथा ध्यातमानान्धावनामसिद्धाग्नि मय्य-
 इत्येवमस्ति

वृत्तियों गीतकर अपने स्वरूपमें छीन करना, यही इस बातका उपाय है कि मैं तीनों गुणोंमें बाहर हो जाऊँ और अपूर्व तेजसो प्रकाशित करना हुआ शुद्धात्मा रहूँ। इस निश्चयका धारी उपशम सम्पन्नही अपनी अनादि अविद्याके वश नब कभी अनन्तानुबंधी कषायके वश हो जाता है कि, उनी समय सम्पन्न ध्रुवसे पतित हो मिथ्यात्व गुणस्थानमें आने लगता है। मध्यमें अधिकसे अधिक छः आंक्यी (अर्धस्थान समयोंकी एक आंक्यी) और कमनीसे कमनी एक समय टहकर सामान्य गुणस्थानमें रहनेवाला कहलता है। त्रिम समय सम्पन्नमें विगच्छता है। इन्दी शिखोंकी वह गह-छता जो मध्यममें नहीं भी पैदा होने लगती है। वह गहलता अनन्तानुबंधी शेषके वश हमी निश्चयमें पड़ने लगती है कि—विषय मूल ही मूल है, इसकी प्रति करना ही उपाय है। इन इन्द्रियशि-खोंकी गहलता निश्चयमें कभी मायासे भी पैदा कर देती है, निश्चय वह विचार आने लगता है कि वास्तव विश्वमय हो न वास्तव हानि हो, हमसे ही पर-वचनमें भी शिखर-मुक्तों प्रति करनी चाहिये। वास्तव में जो सम्पन्न गुणस्थानमें शेष मायाके शिखे करना था वही वास्तव में अब मायापट—रूप हो जाता है। कभी अनन्तानुबंधी मान-की शक्ति हो जाती है। त्रिम अथ प्रथम पदोंमें सम्पन्नही नहीं रह पाते देते हैं, उन्ही पदोंमें उन्मत्ता बाने लग जाती है। आने प्रति शेष आने कृष्णें पश्चिमों विचार अधिमान करने लगते हैं। आने आने मूल देग पड़ी कसुमें मग्ने लग जाते हैं। आने पड़ते रूपमें अस्ति शून्य मानमें मग्ने लग जाते हैं।

यने अपूर्व प्रकाशसे गिरकर ऐसे घोर अंधकारमें आनाता है कि फिर अपनी वस्तुको भुला और सच्चे सुखके उपायसे विमुक्त हो अपदोंमें तृप्त होता हुआ आकुल व्याकुल रहता है और स्वप्नमें स्वपदका ख्याल नहीं करता है। यद्यपि यह परमानंद स्वर्गीरसके स्वाद पानेके अवसरसे च्युत हो जाता है, परन्तु इसकी वृत्ति अनादि घोरानुघोर मिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा कुछ जुदी जातिकी रहती है। निससे इसकी वृत्ति दूसरा अवसर कभी न कभी पाकर कि चौथी सीढ़ीमें चढ़कर परमानंद—स्वादको लेती है। यह निश्चय है कि यह जीवात्मा चौथी सीढ़ीमें चढेगा। यदि बहुतसे बहुत समय ल्यो तो उतने कालका आधा ही काल सर्च होगा जितना काल एक जीवको जगतके समस्त पुद्गलोंको ग्रहण करते हुए बीत जाता है (अर्थात् अर्द्धपुद्गलपरावर्तन)। वास्तवमें यह पतन किया हुआ मिथ्यादृष्टी भी सराहनीय है। तथा यह कभी न कभी श्रीसाधु अरहंत और सिद्ध अवस्थाको अवश्य प्राप्त करेगा। इस अपेक्षासे उसी तरह नमस्कार करनेके योग्य है जैसे हम श्री श्रेणिक रानाके जीव भविष्य प्रथम तीर्थंकरको नमस्कार करते हैं। इस भव्यात्माने एक दफे शिवमंदिरकी झांकी कर ली है। वही आकर्षता इसको फिर अपनी ओर बुझाएगी, अवश्य बुझाएगी और क्रम क्रमसे शिवरूप बना देगी। हम इस समय हम त्रिलोकमें विराजित समस्त सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंके निधयमे सिद्धात्मा अनुभवकर उनके रूपको अपनेमें जोड़ते हैं और समस्त इन्द्रियाधीन मुक्ताभासोंमे विद्वान् परम स्वर्गीन अनुभवानन्दका स्वाद लेते हैं।

१. ... ज्ञाननि अग्नि मद्रापर
 २. ... और नैमो मुर्गने आने
 ३. ... शुरुवातो
 ४. ... वेन-य राता धो मपय २
 ५. ... आम-
 ६. ... इलआइको देना
 ७. ... उपतनेकारी
 ८. ... अक्षानुसर्ने
 ९. ... नमित ममासिं
 १०. ... पार्थीयता का
 ११. ... सिंघारणी ट-
 १२. ... विद्यमान है ।
 १३. ... यह काल
 १४. ... यह
 १५. ...
 १६. ...
 १७. ...
 १८. ...
 १९. ...
 २०. ...

... का ... है । इसके मोहनई
 ... उनके आश्रय लेनेसे
 ... हस्तनापुर
 ... होनेवाले हैं ।
 ... अन्तर्मुहूर्त मात्रके
 ... कर देगी ।
 ... अद्भुत
 ... है और
 ... व्यक्तकी
 ... रक्षा
 ... अन्त काष्ठ
 ... राका
 ... श्रेष्ठ,
 ... शीतली,
 ... स्नि-
 ... धन
 ...

योंकी आशा व अपनी अमन् मान्यताकी तृष्णाको हटाना चाहिये
 और निर्विकल्प समाधिके आगममें जाकर बहोळ करना चाहिये ।
 उस निर्मल आगममें नाना प्रकार नयोंके विकल्परूप—काटे व कंकड
 नहीं है, नयोंकी फनका अभाव है और न वहा गुणस्थानरूप ऊच
 नीचपना है । अन्त निमल आगममें ही रमण करना मेरा हित है ।
 उस आगममें कान्ठ व चतुर्भुजिभंगी प्रिया मेरे निकट आ जाती है,
 एक एक कर्ममें अनेक प्रकार सभाषण और परस्पर प्रीतिके प्रादु-
 र्भाव चलन चलनका अन्तक है । उस परम सामायिकमें मेरा
 वन शान्त व सुख व शोचिका पुन—रूप ही हुआ मानों शकलता
 ही व वन उद्योग के अन्तक है परन्तु भिन्न २ ही रहते हैं
 परम भिन्न २ ही रहना ही मेरा स्वरूप काम्त्वमें अव्याबाध है ।
 यात्र त्रिनेत्र व नीत्र और मन्द शब्द, नात्र और मन्द गन्ध, तीव्र
 और मन्द रस, नीत्र और मन्द स्पृश, तथा भारी व हलके पुद्गल
 मन्त्र सब ही मेरे आगममें अपने स्वाभाविक वेगको लिये हुए चले
 और नयोंके अन्तमें २३ का नहीं पगना, कोई मलीनता
 नहीं अना है, अन्त नट अन्त होता । यह मेरी अनुभूतिका ही
 प्रताप है कि अन्त नयोंके अन्त व नयोंके अन्त, परन्तु मैं
 स्वभाव व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त
 दर्शनीय व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त
 रंगक अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त
 दुर्लभ व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त व अन्त
 उन्मत्त व अन्त

वीर पुत्र ।

(११)

जानकरका पतिव्रत भावका समुद्र विज
नियुक्तका अन्वेषण अपने ज्ञान दर्शनसे प्राप्त
अपराधको प्राप्त हो रहा है । यह ज्ञानी अ
वश्य परिणामोंके समझे विविध-रूप होकर
भोह-विषये अन्वेषण नियम कर रहा है और
अन्वेषण करते नए नए सब भोह-मुद्दके भोह
एक भावनाकी अब न विधि की कदम ही की
एक अन्वेषण अन्वेषण विधि अन्वेषण
एक-दो नए कदम और अपने अन्वेषण विधि
अन्वेषण होकर है । यह अन्वेषण अन्वेषण
एक अन्वेषण और एक-दो एक ही कदम
एक-दो एक ही कदम एक-दो अन्वेषण
एक-दो अन्वेषण अन्वेषण और न अन्वेषण विधि
की अन्वेषण ही कदम है । एक-दो एक
एक-दो अन्वेषण और है एक-दो अन्वेषण
एक-दो एक ही कदम और एक-दो अन्वेषण
एक-दो एक ही कदम और एक-दो अन्वेषण
एक-दो एक ही कदम और एक-दो अन्वेषण
एक-दो एक ही कदम और एक-दो अन्वेषण
एक-दो एक ही कदम और एक-दो अन्वेषण

प्रामाण्य विन्मय ज्योतिके दर्शनमें लुप्त हो ~~जाता है~~
लेकर संतोषित हो अपनेको सुखी अनुभव करेगा है

आत्मीक रेलगाड़ी :

(३४)

परमात्म-तत्त्व-वेदी स्वयं बन्धुका जेठ नाम ~~का~~
रहा है । सम्पन्नदृष्टी जीव अपने ~~अनुभव~~
भी अपनेमें नहीं होने देता है कि मैं ~~किस~~
सम्पन्नता उनके अनुभव गोचर है । ~~उस~~
जीवका जीवत्वभाव उनकी दृष्टिके ~~सम्पन्न~~
आत्मत्व ही इन निगाहम्बके लिये ~~सम्पन्न~~
स्वत्वम्बन निश्चय निगाहम्बका ~~भाव~~
भाव सम्पन्नमें सम्पन्न रहकर ~~सम्पन्न~~
सम्पन्नका भाव ~~है~~ ~~उसके~~
कामना है ~~जिसके~~ ~~उसके~~
उसका ~~भाव~~ ~~है~~ ~~उसके~~
उसका ~~भाव~~ ~~है~~ ~~उसके~~
उसका ~~भाव~~ ~~है~~ ~~उसके~~
उसका ~~भाव~~ ~~है~~ ~~उसके~~
उसका ~~भाव~~ ~~है~~ ~~उसके~~
उसका ~~भाव~~ ~~है~~ ~~उसके~~
उसका ~~भाव~~ ~~है~~ ~~उसके~~
उसका ~~भाव~~ ~~है~~ ~~उसके~~

तत्त्वरूपी अंजन ।

(३९)

आत्माराम अभिराम केवलधाम स्वकल्याणके सन्मुख हो सर्व अपने उन वैरियोंसे मुंह मोड़ रहा है, जिनको कि थोड़ी देर पहले अपना मित्र समझ रहा था । अनादिकी भूल मिथ्याके अब यह स्वपथका अवलम्बी हुआ है । इसने अपनी सब उन्मत्तता वहा डाली है तथा शम दम और यमसे परम शांत, विवेकी और स्वआचारवान् बन गया है । जिनेन्द्र कथित स्याद्वादरूप परमागम द्वारा प्रदर्शित तत्त्वरूपी अंजनको लगाकर अब इसने अपनी मिथ्यादृष्टिको सन्यस्तृष्टि कर दिया है । मोक्ष—मार्गमें साधक और बाधक ऐसे दोनों प्रकारके तत्त्वोंका सत्य स्वरूप इसने पहिचान लिया है । इसके अंतरंगमें भव-रुचि टूट गई, इन्द्रिय—मुखोंकी तृष्णा विवट गई तथा कथायोंकी प्रमरता मिमट गई है । यह अब अपने रूपको देख चुका है । इसने अपनी गुप्त निधियों पहिचान लिया है । अब यह सर्व परका कर्जा चुककार अपने ही मूल धनमें अपनी ही नगरोंमें, अपनी ही निधियों द्वारा व्यय कर रहा है । मोक्ष—मुखका विषामु हो, अतीन्द्रिय धनमें पहुचन है इसके मन्त्र्य है । अंतरंगगतकः मुहावना भोजन है इसके प्रिय है यह अन्तराम अपने शुद्ध स्वरूपकी ओर देखन ९ अन्तर नहीं है । दृष्टि निबल है, इसमें बहुत देर तक एकमां देव नहीं मकर यद्वि इतर ९ कर पुन, ९ अवलोकन करन है तथा वि एकस्व अवस्थकं न होनेमें किंचिन् आकुलित रहन है । परन्तु इसका कारणवार देवना इसकी ज्योतिकी शक्तिके



काय जिस परमात्माके मान-द्वारे से सम्बन्धित होते हैं उसी
 परमात्माके पद नदीके समान अनन्तता से व्यक्तित्व का रूप
 रहते हैं, वे ही सुख-दुःख संशयों अज्ञान कायके पक्ष परम-
 तक पान करते हैं। ऐसे सुखदुःख विन्मय पान तात्पर्य जिस
 निर्विकल्प समाधिमें सब आरोहण करते हैं, वह तीन श्रेणियों
 जगत्के उपर्युक्त और स्वयं सुखके अनुभवकर स्वयं ही परमात्मा
 हैं—इस सम्बन्ध विचार करते हैं। यह विचार उनके तन्त्र जगत्में
 ह्य ही भी विरल-साधक तात्पर्य से ज्ञात है। जहाँ अज्ञान-
 का कृष्णके देवता हुआ उनके वैराग्य-का सुखके
 प्रसन्न अविशय तृप्त होता हुआ सम्बन्ध बनाता समान-सिद्धि
 निरालय होता है और जिस विरलित का कालिकाके भेद-
 मनुष्यके होता हुआ अपने अंतर्गत कालके प्रकृष्टित करता है तथा
 परम पवित्रता प्रसन्न ही आह्लाद करता है कि नती में स्वयं
 सिद्ध, निरालय, निरालय, मानसुम और सुख-प्रसाद है। यह
 आह्लाद ही तत्कालिकीके अन्त-तन्त्रों के होते देता है और यह
 ही अपने बहुतेरे गेग हटकर अन्त-गुह ही अपने समष्टि
 शब्दोंमें लक्ष्य है और प्रसन्न अंतर्गत उनकी शक्तिमें हीनकर
 विद्वान्मन्त्र अनुभवानंदका स्वयं ही है।

आत्मीक हलवाई ।

१०

वेदव्याख्यानमें पद-संग्रह प्रथम अर्थिकता ही अन्तर्गत,
 सिद्ध-संग्रह-संग्रहण अन्त-संग्रहण अन्त-संग्रहण अन्त-संग्रहण

कल जिन परमात्माके ज्ञान-दृष्टिमें शोभायमान होते हैं उसी परमात्माके परम नगरेर नगल आनन्द जो अवलोकन कर वृत्त रहते हैं, वे ही तुषा-सगूह चंद्रमाके अनुगम कलके पाकर स्व-मृ-त्कर पान करते हैं। ऐसे सुखसमुद्र विन्य परम वनस्वी निज निर्विकल्प समाधिमें जब आरोहण करते हैं, तब तीन लोकके जनमे प्रथक् देख और स्वयं एकरके अनुभवकर स्वयं ही परमात्मा हैं-ऐसा सम्यक् विचार करते हैं। यह विचार उनके संसार कथनमे ह्य हरे भरे चित्त-लहादरूप उपवनमें ले जादा है। जहां अनन्तगुण रूप वृत्तके देखता हुआ उनकी वैरान्य-रूप सुगन्धके प्राप्तकर अतिशय वृत्त होता हुआ सम्यक् दृगात्मा मनरम-सरोवरमें निमज्जन होता है और चिर विरहित कर्म कालिकाके भेद-ज्ञान स-बुनमे घाता हुआ अपने अंतर्मुख कलके प्रकृष्टित करता है तथा परम पवित्रता प्राप्तकर ऐसा आल्हाद करता है कि माने मैं स्वयं-सिद्ध, निरंजन, निराकर, ज्ञानपुंज और सुख-धाराकर हूं। यह आल्हाद इन गत्वज्ञानके अत्म-तनके पुष्टि देता है और यह जीव अपने बहुरंग गंग ह्यकर अत्म-पुष्ट हो अपने रमादि शत्रुओंमे लहन है और प्रत्येक जेठे उनके शक्तिके हानकर विनयमन्दर अनुभवानंदक स्वद केन है।

आत्मीक हलवाई।

३७

नेमन्वत्परन्तु, गगन स्वयं प्रहर, नवविज्ञान हेय अन्वयनं, निद्रमृग-इशानकर्म अज मन्मूर्त भव-नारियेने उदम हो शिव-

यह स्वरस-वेदी संसार पतनसे निर्भय रह निज रस विन्दुकी आशा करता है, परन्तु यह सम्यक् पुरुषार्थी है, इससे मात्र आशा ही करके चुप नहीं हो जाता है। इसकी रुचि इसको शीघ्र ही स्वसवेद-रसका अनुभव कराती है। त्रिलोकके पद्द्रव्यमय पदार्थोंको सम्यक् थद्दानमें रखनेवाला यह सुधी उन सम्पूर्ण पदार्थोंमें किसी तरहका भी सासारिक राग और द्वेष नहीं करता है, कि निज पदार्थोंको मिथ्या-दृष्टी सम्बन्ध करके अपने मान लेता है तथा मनको प्यारे पदार्थोंमें राग और अमुहाने पदार्थोंमें द्वेष करता है। यथार्थ वेदी ही वास्तवमें आत्मज्ञानी और सुखमई है। वही वीतराग-विज्ञानतारूपी अपूर्व शक्तिमई देवीका सच्चा उपासक है। वही परम उत्सवमई आत्मीक अस्ताडेमें समस्त त्रिलोक जन-समूहके सन्मुख ज्ञानानन्द नाम नृत्य करके उसी तरह अपने मोक्ष-राजाको रिझाता है, जिस तरह इन्द्र जन्मोत्सवके समय धीतीर्थकर प्रभु और उनके माता पिताके सन्मुख आकर आनन्द नाटक करके आनन्द करता है। यह मनयमारका नाटक परमसुखरूप है। जो इस नाटकके रसिया-ने इस दुःखरूप मातापारके अन्दर निवास करते हुए भी मोक्ष-कांसकेमें परमाह्लादके भोक्ता हैं। यह मान विश्रुत सत्य है कि अनन्य गुण पर्यायवारी आत्मीक स्वरूप स्याद्वादके द्वारा सम्यक् निश्चय कर जो कोई जीवत्मा स्वात्म स्वभावमें व्यवहृत होकर विषय-कथाओंमें हटना है और पुन पुन शूद्रात्मानुभवका भावना करता है, वही जीव स्वत्मानुभव करके अनुभवानन्दका स्वाद लेता है।

न कर्त्ता हूं न भोक्ता हूं ।

(३९)

मैं बंधा हूं व गुला, मैं संसारी हूं व सिद्ध, मैं क्रियावान हूं व अक्रिय, मैं सरागी हूं व वीतरागी, मैं मूढ़ हूं व चतुर, मैं दुष्ट हूं व सज्जन, मैं कर्त्ता हूं व अकर्त्ता, मैं भोक्ता हूं व अभोक्ता, मैं सूक्ष्म हूं व स्थूल, मैं अनेक हूं व एक, मैं क्रोधी हूं व शान्त, मैं नित्य हूं व अनित्य, मैं दृश्य हूं व अदृश्य, मैं आगमज्ञ हूं व स्वभावज्ञ, मैं लोभी हूं व संतोषी, मैं जन्मा हूं व अजन्मा, मैं सुखी हूं व दुखी, मैं वर्णवान हूं व अवर्णवान इत्यादि अनेक वचनके जालोंको इन्द्रजालकासा फैलाव समझकर जो कोई उन्हें दूर करता है और इन विकल्प-जालोंसे अतीत निजरसमय साक्षात् स्वभावमें स्फुरायमान ज्ञान ज्योतिको ही ग्रहणकर सम्पूर्ण लोकालोकके पदार्थोंके सम्यक् कारण और कार्यका ज्ञाता होता हुआ अपनी शुद्ध चैतन्यमयी जातिसे ही नाता करता है और उनसे स्वरस-वेदनका आनन्द परस्पर लेना देना है वही आत्मा तत्त्वज्ञानी और आसन्न-भव्य है । यही स्वभाव-स्वामी अपनी उपयोग परिणतिरूपी जलका त्रिलोक-वनमें समेटकर अपने स्वरूपके ज्ञानमई नीचे खाड़ेमें भरकर अट्ट अमृतके भटारका धनी होता है और उम धनके सुखमय मदमें ऐसा उन्मत्त हो जाता है कि ग्व मात्र भी अन्यकी परवाह नहीं करता । एक निज अनुभूतिका ही प्याग रहता है और उसीमें रति करता है । दृढ़ सम्यक्की अचल महिमा उमके स्वरूपमें

जिस कायमार्गणामें भ्रमते हुए एकेन्द्री-पृथ्वी, जल, तेज, वायु-कायिक जीव क्रमसे मसूर व चनेके सदृश गोलकर, जल-बिन्दु सदृश गोल, सूची (सुई) सदृश लंबे बहुभुज, घना सदृश चौकोर आकारवाले सर्व ही उत्कृष्ट व जघन्य घनांगुलके असंख्यात भागमात्र अवगाहनाको घेरे हुए निगोदरहित ऐसे अदृश्य शरीरके रक्ते हुए कि जबतक इनके बहुतसे शरीरका समूह न मिले तबतक इन्द्रिय-गोचर न हों, मूर्च्छित रहते हुए जड़मई बने रहते हैं; उस कायमार्गणामें उस अनुभवाका गमन नहीं होता । जिस एक जीव वाली प्रत्येक अप्रतिष्ठित व अनेक बादर निगोदजीव आश्रित सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जघन्य घनांगुलका असंख्यातवां भाग वाली तथा उत्कृष्ट १००० योजन (छोट) लंबी, एक योजन चौड़ी गोल कमलकी कायमें पड़े हुए संसारी जीव छेदन भेदन आदिके दुःख सहते हुए आकुलित रहते हैं, उस कायके मोहने आत्मानंदीका पतन नहीं होता: दो इन्द्री जीव जघन्य घनांगुलका संख्यातवां भाग अनुंघरीकी व उत्कृष्ट १२ योजन लंबी संखकी पर्यायमें; ते इन्द्री जीव जघन्य कुंभु हो अनुंघरीसे संख्यात गुणी व उत्कृष्ट श्रीष्मकालमें त्रम जीव हो ३ कोन लंबी कायामें, चौइन्द्री जघन्य काणममक्की हो कुंभुसे संख्यात गुणी व उत्कृष्ट एक योजन लंबी भ्रमरकी कायामें, पचेन्द्री जघन्य मित्र्यक मत्स्य हो काणममक्कीमें मन्व्यात गुणी व उत्कृष्ट तीन पत्यके शरीरमें पैदा हो शरीर-मोही रह मिथ्यादर्शनके कारण मूर्छा और वियोगसे दुःख पाने है, परन्तु हर्ष है कि स्वान्म अवलोकको सम्यग्दृष्टीको इस

वेकल्पते अलग रहता है। वास्तवमें यह शरीर पुद्गलकी वर्गगा-
 नीते ही उत्पन्न है। जिस पुद्गलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्णके २० गुण
 हैं वे गुण आत्माके कोई भी नहीं हैं; न यह क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य
 आदि है। यह सब नाम शरीर ही के हैं, आत्माके नहीं। जिस
 शरीरका निरन्तर पूरण गलन स्वभाव है, जो भीतर मलमूत्र आदिसे
 भरा है, जो स्वयं अपवित्र और जो इसका स्पर्श करे उसके अपवि-
 त्र करनेवाला है; ऐसे तनमें नित्य हो जो वैतन्य तनकी पवित्र-
 तामें तन्नय रहता है, अक्षयी रहकर स्वतनयके स्वादमें मग्न रहता
 है, ऐसे अनुभवाके अहमिन्द्रोक्त वैक्रियक शरीर भी भिन्न ही प्रतीत
 होता है और वह तीन कालमें भी ऐसे तनकी कामना नहीं करता।
 जब जड़ तन ही भिन्न है तब तनके सम्बन्धी माता, पिता, भाई,
 बन्धु, पुत्र, स्त्री, पुत्री, धन, धान्य, क्षेत्र, महल, आदि सर्व ही आत्म-
 स्वरूपसे पृथक् हैं। जो मोहीं इनके मोहमें पड़ अपने स्वरूपके भु-
 लाता है—वह अपना ही शत्रु, द्रोही और अपना ही अकल्याण करने-
 वाला है। निज रस—रसियाके कोई पर रसके स्वादकी चिन्ता नहीं
 होती—वह रसिक स्वमवेदन ज्ञान, अमल, गुणवान्, भवदधि—तारण-
 यानपर आरुढ़ हो मनय २ विशुद्ध भवोंमें बढता जाता है, और
 अपने मृगरूप स्वरूपमें लवचन रह शिव—नरके मोहमेंबले अद्भुत
 आकर्षणमें प्रवेशकर अगिज मर्दाने अनेक मर मरण स्वरूप
 अनुभवानन्दक स्थान करन है

वेदमार्गणाकी आकुलता ।

(४१)

शशि मम उज्ज्वल गुणधारी, अविकारी, अत्यन्त निरुद्ध भव्य जीव कुमुद विस्तारी, अज्ञान-निशि-तम-हारी, भवाताप-संतम, सत्त-शमनकारी, परवस्तु आधाररहित निराधार परिणति आकाश विहारी, अनन गुणरत्ना भंडारी, परमात्मा सदृश अंतरात्मा आज सम्पूर्ण त्रिवेदरूप तंत्र मन्त्रेशानामे रहित हो वेदरहित मुक्त-तियाके स्मरणमें दत्तचित्त हो रहा है और अपनेको संसारमें रहते हुए भी संसारस्थामे पृथक् मान रहा है, निम वेदमार्गणामें भ्रमण करके यह अज्ञानी जीव अपना संसार बनाता है, उस वेदके विचारको जब हेय निरीक्षित किया जाता है तब स्वन स्वभाव ही अन्तरात्माका परमोक्ष-मार्गमें बढ़ना चला जाता है । निम पुरुष वेदकी तीव्रताने त्रिखंडी रावणको विध्वंस कर नरकवाम दिया, व म्यारहवें रुद्र सात्त्विकरूप मर्ग चिन्ह छिद्र भ्रष्ट कर, नरक पहुंचाया, व दुःशासनको समर्पण करा कुमति घाम बनाया तथा निम पुरुष वेदके मोहमें नारी जन मीमें लुब्ध हो निज-शील्यमनको मन्थन करते हैं, रूप वेदको निज अरि जान जो त्यागने और ब्रह्मरूपमें रमन-वे मधे अनगत्मा ब्रह्मण और ब्रह्मचारी हैं । निम स्त्री देवी उत्कलने चन्द्रनायाका मन एकाएक पुरुष शोकसे हटा उसे श्रीरामचन्द्र महात्म्यके रूपमें लुब्ध कर आनन्द तक प्रोथिन करण कि उमका यही प्रिय पढ़ने, लक्ष्मणवशसे मरने तथा अज्ञान

होनेका कारण हुआ व जिस श्रीवेदकी तीव्रतासे चम्पापुरकी रानीने श्रीसुदर्शन सेठ ऐसे शीलवानको शूलीभर बिठवाया व जिस वेदके तीन मोहमें पड़े श्री—समान कामवेदनासे आकुल हो निज निजानन्द अविनाशी शिवनाथके मोहसे छूटी रह सांसारिक पुरुषोंकी इच्छा कर नके, तिर्यच योनि वास करती हैं, उस श्रीवेदके हेय समझ जो जीवात्मा त्याग करते हैं वे ही निर्वेद अवस्था प्राप्तकर स्वात्म स्वरूपमें मगन होते हैं। जिस नपुंसक वेदमें पड़े नारकी, नर और तिर्यच कामकी तीव्र ज्वालासे दग्धायमान होते हुए सम्पद्यष्टिका लाभ न कर आत्मस्वरूपको नहीं पहिचानते उस खंड वेदको सर्वथा हेय समझ अंतरात्मा आंतरिक मनोहर कृत्तिका अवलम्बन से मुखिया स्वभाव धारण करते हैं। जो इस शरीर, शरीरके अजयम और इन्द्री विषय रागद्वेषादि कषाय—इन सर्वको अपने स्वरूपसे पृथक् जानने, मानते और अनुभव करते हैं, वे जीव भवकारी निराकुलाहारी मुखीसे अर्थात् भवहागी निराकुलाकारी अनुभवानंदका मुचनयन मन की अत्यन्त तृप्त रह कृतकृत्यका अन्वय और दिगम्बरनेकी महत्त्व प्रगट करते हैं।

कषायोंकी वंचकता ।

१६

पद्मनाभ स्वामी—दिकारी समस्त अन्तःकरणे ज्ञान
 शक्ति मुख्यान्तरात्मा प्रकाशित अन्तःकरणेकी अन्तःकरणेकी
 स्वामीके अन्तःकरणे अन्तःकरणेकी अन्तःकरणेकी अन्तःकरणेकी

जिस अंशपूर्व काल तक रखते हैं, उससे संख्यात २ गुणा अधिक
 काल तक क्रमसे नाया, मान तथा श्रेयस्व अनुभव करते तथा
 देव श्रेयस्वो जिस अंशपूर्व तक भोगते, उससे संख्यात २ गुणा
 काल तक क्रमसे मान, नाया और लोभके धरण करते हैं।
 और मनुष्य विषय जिस अंशपूर्व काल तक लोभ कथायके
 रखते हैं, उससे संख्यात २ गुणा काल तक क्रमसे नाया, श्रेय
 और मानके हनलके सहन करते हैं। बाल्यमें चार गतिमें
 अल्प मान प्रकारके सुखदुःख रूप बन्धुके पैदा करनेवाद्य इस
 अंतरी वैयक्य चक्र-मूल्य कथाय ही है। यही बन्धु
 लोभके पैदा करता और निर्यादशन रूप लोभके संश्लेष परि-
 श्रमत्व बीनके बेटा है, जिसके कभी कहुवे कभी मीठे फल
 भोगे २ यह लोभ मीठे फलोंके लोभों तरफ़ करता है, परन्तु
 अन्तर्गत स्वल्प भोग्य फलोंके न प्रकार रूप परमें सुख काल
 अन्तर्गत होता है और अन्तर्गतके तरह निःकथाय भवसे
 शक्ति शक्त भवकी सुखद अन्तर्गतके नहीं २ अनुभवानन्द-
 के समते शक्ति रह भव-अनन करता है। अन्य है कथाय-विनयी
 की अन्तर्गत निनकी अन्तर्गतके कथायके वेग किनी ही तरह
 मतिन नहीं कर मला, जो निनका अन्तर्गतके सुखद ल-
 पन करते हैं वे ही अन्तर्गतके सुखदके अन्तर्गत अन्तर्गत, अन्त-
 र्गत अनुभवानन्दके भोग वृत्त नहीं है

धनी मोहतमनाशक स्वपरप्रकाशक अनुभव कर रहा है । आत्मप-
 दार्थ यद्यपि अरूपी इन्द्रियोंसे अतीत है तथा मनके भी अगोचर है,
 परन्तु जैसे कोई आम्रफलका स्वरूप परके द्वारा जान आमके गुणोंका
 भले प्रकार निश्चय कर जब उस आमके रसका स्वाद लेता है अथात्
 जब अपने उपयोगको रसके साथ एकतारूप करता है तब उसकी
 विलक्षण मिष्टताका अनुभव करता हुआ उसके रसमें मोह होनेके
 कारण सात्ता मानता है । वैसे ही यह तत्त्वज्ञानी प्रमाण नयोंके द्वारा
 आत्माके स्वरूपको यथार्थ जान निश्चय करता है और तब अपने
 अमूर्तीक आत्माके उपयोगको इन्द्रिय—ग्राम और मन—मर्कटसे पृथ-
 क्कर परमशुद्ध परम पारिणामिक भावके धनी कारण परमात्मामें
 जोड़ देता है । पुद्गल परमाणुओंके बंधमें जैसे दो गुण अधिक द्रिग्वता
 व रूतता कारण हैं वैसे ही इन अमूर्तीक शुद्ध भावोंके परम्परबंधमें
 स्वस्वरूप उज्वलता कारण है । इस अपूर्व मन्बन्धके हांनमें ही
 अनुभवकी कला कीटा कलाप करनी है और जैसे चन्द्रकला और
 चन्द्रक नि मणिद मयोर उरूप स्वके उत्पन्न करती है वैसे ही
 जब सामान्यके इन यम न से - हृदय उत्पन्न, मन्बन्ध और शान्-
 वके पु न ३ उरुता सामद्रष्टके मये, उरुता के ने अंश प्रत्यम
 के कि मयके विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के
 उरुता के विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के
 अनुभवानन्दके उरुता है - के विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के
 उरुता के विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के
 उरुता के विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के विरुद्ध उरुता के

